

भूमंडलीकरण और बाजार अर्थव्यवस्था : कुछेक सवाल



डॉ. रंजीत कुमार
एम.ए., पीएच.डी. (अर्थशास्त्र)
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

भूमंडलीकरण दो शब्दों ‘भू’ एवं ‘मंडलीकरण’ से मिलकर बना है। भू का अर्थ होता है- भूमि एवं मंडलीकरण का अर्थ होता है- समाहित करना। अर्थात् सम्पूर्ण विश्व का एक मंडल या परिधि में समा जाना या यों कहें कि विश्व के समस्त देशों का अपनी सीमाओं को पार कर आर्थिक, राजनीतिक एवं सांख्यिक क्षेत्रों में या इनमें से किसी भी क्षेत्र में परस्पर सहयोग हेतु एक छाते के नीचे आ जाने को ही भूमंडलीकरण कहते हैं। वस्तुतः प्रत्येक देश का अन्य देशों के साथ वस्तु, सेवा, पूँजी, मानवीय संसाधनों आदि का अवाध रूप से आदान-प्रदान ही भूमंडलीकरण कहलाता है।

उल्लेखनीय है कि भूमंडलीकरण 1990 के दशक के प्रांरभिक वर्षों के आते-आते सम्पूर्ण विश्व में फैल गया। भूमंडलीकरण नयी चीज न होते हुए भी अपने खास व्यापारिक नियमों, लक्ष्यों और अनन्त विस्तार की वजह से एक अभूतपूर्व घटना है, इससे वैश्विक वित्तीय बाजार का उत्थान हुआ। टेलीविजन, इंटरनेट तथा संचार के दूसरे रूपों के साथ सूचना का भूमंडलीकरण होने लगा। दुनिया में अन्तर्राष्ट्रीय बढ़ा, एक गतिशीलता आयी। भूमंडलीकरण ने दुनिया में वित्तीय पूँजी के किसी भी देश में आने-जाने पर लगी रुकावें मिटा दी। देशों के हाथ बंधते गये। सरकारों जनहित के अनुरूप अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करने के लिए क्षमतावान नहीं रह गयी। यही वजह है कि इन लगभग दो दशकों में बाजार के मूल्य मनुष्य जाति की अब तक की सारी लोकतांत्रिक उपलब्धियों पर भारी है।

भूमंडलीकरण की नौबत इसलिए आयी, वित्तीय पूँजी अबाध स्वतंत्रता और ताकत इसलिए हासिल कर सकी कि सैकड़ों सालों के संघर्ष की वजह से आम जनता ने जो लोकतंत्र हासिल किया था, उसका बड़े पैमाने पर आर्थिक दुरुपयोग हुआ। सार्वजनिक उद्यम निजी कंपनियों के विकल्प न बन सके। आमतौर पर सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों, सरकारी पैसे से चलने वाले शिक्षाण संस्थानों-अस्पतालों और सरकारी कार्यालयों में लंबे समय से निकम्मेपन और लूट के दृश्य छाये रहे हैं। श्रमजीवी वर्ग 'अर्थवाद' में ज्यादा फंस गये। वे स्वाधीनता संघर्ष के दिनों के संकल्प भूल गये। यह सामने आया कि निजी कंपनियों में काम अधिक अनुशासनबद्ध औश्च उत्पादन ढंग से होता है, उनमें जवाबदेही होती है। भूमंडलीकरण या वित्तीय पूँजी की अबाध स्वतंत्रता, जिसे उसका आवारपना कहा जाता है, दरअसल कुछ और नहीं, जनता के हाथ में लंबे समय के संघर्ष के बाद जो कुछ आया था, उसका छिन जाना है।

बीसवीं सदी के शुरुआती दशकों से मनुष्य को आर्थिक मनुष्य माना जाने लगा था। भूमंडलीकरण के संदर्भ में एक तथ्य यह है कि इसने आक्राकमक ढंग से आर्थिक सिद्धांत को केन्द्रीयता दी। इसने 'प्रत्येक को उसकी जरूरत के अनुसार' बदलकर रख दिया- 'सभी को उसके खरीदने के सामर्थ्य के अनुसार' मानव जीवन कुछ पहले से ही आर्थिक कसौटी के आस-पास सिकृड़ता जा रहा था, परंपरागत मानवीय गुण तिरस्कार से देखे जाने लगे थे। अर्थतंत्र और संस्कृति के संबंध को लेकर यह यांत्रिक दृष्टि प्रचारित की गयी कि आर्थिक आधार बदल दो, सबकुछ बदल जायेगा। भूमंडलीकरण ने इसी 'अर्थ' को दोनों से पकड़कर एक दूसरी दिशा से सबकुछ उलट-पलट दिया।

आज दुनिया में आर्थिक स्तर पर घुलने-मिलने के अभूतपूर्व दृश्य हैं। एक ही माल के पुर्जे अनेक देशों में बन रहे हैं, जुड़ किसी अन्य देश में रहे हैं और माल बेचा कर्ही औश्च जा रहा है। वैशिवक स्तर पर खुली स्पर्धा ने नयी-नयी चीजों के आविष्कार, उद्यमी प्रतिभाओं और तकनीकी नवोन्मेषों के लिए

वातावरण बनाया है। अब बड़े म्युजिक कन्सर्ट में एक नहीं कई देशों के कलाकार एक साथ मिलकर काम करते हैं। देखा जा सकता है कि भूमंडलीकरण का सामाजिक और सांख्यिक मामलों में भी प्रभाव पड़ता है। पुरानी वर्जनाएँ तेजी से दूटी हैं। लोग स्वतंत्रता का अनुभव करने लगे हैं। वे सभी जो दबे रहते थे, उनमें से कई बोलने लगे। हैं। वे भी सुख को थोड़ा-सा छू लेते हैं, जो दिन भी सिर्फ खटते रहते थे। उनके पास उच्च संसार का मनोरंजन पहुँचा। लोगों का बड़े पैमाने पर ज्ञान और तकनीक की एक नयी दुनिया में प्रवेश हुआ। भूमंडलीकरण ने एक सख्त दुनिया को अनार-सा खोल दिया।

भूमंडलीकरण की उपर्युक्त खूबियों के बावजूद उसका विरोध किया जाना चाहिए। उसके नकारात्मक असर व्यापक हैं, हालांकि इसके प्रभावशाली विरोध का अभी दुनिया में अस्तित्व नहीं है। यह अब ज्यादा उजागर हो चुका है कि नव-उदारीकरण, आर्थिक सुधार और निजीकरण की नीतियों पर चलते हुए प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में भले वृद्धि हुई हो, दुनिया में विषमता बढ़ी है। आम जनता का जो रक्त चूसते थे, वे अब रक्त गटागट पीने लगे हैं। जनता की तकलीफें बढ़ी हैं।

मानव विकास रिपोर्ट (2009) के अनुसार भारत में खास्त्य, शिक्षा और बच्चों की दुर्दशा बढ़ी है। राजनीतिज्ञ इस पर चर्चा न करके छोटे मुद्दों पर ज्यादा तू तू-मैं करते हैं। आज 46 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। एक हिसाब से भारत के 40 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं, अर्थात् लगभग 50 करोड़ भारतवासी। ये भी मनुष्य हैं, पर अशिक्षा, अभाव और 'कहाँ जाई का करी' की चिंता से पागल। प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के हिसाब से भारत दुनिया की सूची में जहाँ हैं, मानव विकास सूचकांक की सूची में उससे छह सीढ़ी नीचे है। अनुल्य भारत अभी दुनिया में बहुत पीछे है। भारत में कर्ज न चुका पाने या गरीबी के कारण दुनिया में किसी भी देश से ज्यादा किसान आत्महतया कर चुके हैं। वयस्क निरक्षरता की दर अभी भी 34 प्रतिशत हैं। विकास की दौड़ में भारत

182 देशों के बीच 134वें स्थान पर हैं, अर्थात् जहाँ पहले था वहीं। मानव विकास सूचकांक मुद्रितः स्वास्थ्य, शिक्षा और आय इन तीन चीजों पर निर्भर करता है। आय में वृद्धि होने पर मनुष्य का जीवन-स्तर कितना ऊपर उठा है, माना जाता है कि यह स्वास्थ्य और शिक्षा की दशा पर निर्भर करता है। भूमंडलीकरण ने शहरों में स्टार अस्पतालों और शिक्षण संस्थाओं की शृंखला जरूर खड़ी की हैं, पर उनमें सिर्फ अमीर लोग जा सकते हैं। स्वास्थ्य और शिक्षा की सामान्य हालत कितनी खराब हैं, बहुत से लोग सोच नहीं सकते। सरकारी अस्पताल में डॉक्टर नहीं हैं, स्कूल से शिक्षक गायब हैं और गंदगी मानों राष्ट्रीय संपत्ति है। निश्चय ही सिर्फ औद्योगिक उत्पादन और निर्यात के सूचकांक या मल्टीप्लेक्स की रौनक देखकर विकास का सही अंदाजा नहीं लगाया जा सकता।

भूमंडलीकरण से आम लोग इसलिए आहत हैं कि उसके 'मानवीय चेहरे' पर बहस भले चलती हो, सामाजिक सुरक्षा की जगह वस्तुतः लगातार सिकूड़ती जा रही है। बाजार अर्थव्यवस्था औश्र सरकारी तंत्र दोनों अपने-अपने रास्ते से जना की तकलीफें यथावत रखते हैं। दूसरी समस्या यह है कि बाजार सामाजिक जरूरतों की जगह सिर्फ 'मुनाफा' के बारे में सोचता है। सिर्फ मुनाफे के पीछे ढौड़ने का अर्थ है सामाजिक मूल्यों का लगातार क्षय। तीसरी समस्या यह है कि भूमंडलीकरण एकधुरीय है, विकसित देश कम-विकसित या पिछड़े देशों की अर्थव्यवस्था पर हमलावर से होते हैं। यह लक्षित किया जा सकता है कि बाजार अर्थव्यवस्था पर भूमंडलीकरण की बढ़ती निर्भरता ने विश्व में शान्ति और न्याय के लिए मुश्किल स्थितियाँ पैदा कर दी हैं।

हम देख सकते हैं कि वित्तीय पूँजी की दुनिया में बेरोकटोक आवागमन या भूमंडलीकरण का एक बड़ा नजीजा आर्थिक मंदी (2008) के रूप में आया। खुद अमेरिका की कुछ बड़ी कंपनियाँ एक के बाद एक लुढ़कने लगीं। दुनिया भर में सरकारों को ऐसी नयी कंपनियों को बचाने के लिए आगे आना पड़ा। इन कम्पनियों का मानों कहना है, मुनाफा हमेशा हमारा, बुकसान में

सरकार का साझा। आर्थिक मंदी के बचाव के लिए विलासिता में कमी की शुरूआत हुई, कई कंपनियों में बेदर्दी से छंटाई हुई या कार्मिकों के वेतन में कटौती की गयी। सरकारी और निजी क्षेत्रों में व्यय पर पाबंदी लगी। भूमंडलीकरण को अपनी अराजकता को नियंत्रित करने के उपाय सोचने पड़े। य सनिश्चित नहीं रह गया क निजी कम्पनी में पारदर्शिता ही होगी, भष्टाचार नहीं होगा। आर्थिक मंदी का संकट कई वजहों से पैदा हुआ। इसके कारण बड़े-बड़े मॉल में अन्तर्राष्ट्र ब्रांड की लंबी-चौड़ी दुकानें सञ्चाट बुनने लगी। आखिरकार मुख्यतः भोग-विलास की वस्तुओं और दिखावे के जोर पर बाजार-अर्थव्यवस्था अपना भारत कितने समय संभालकर रख सकती थी। शेयरधारक लोग मंदी से पिटे। भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर डी. युब्बाराव को कहना पड़ता, इस विचीय संकट ने आदमी का भरोसा तोड़ा है। इससे भूमंडलीकरण के नैतिक आधार पर प्रश्न खड़ा हो गया है।

भूमंडलीकरण का दौर गतिशीलता और चमक-दमक के साथ तनावों से भरा है। जिन्दगी की इतनी नकली जरूरतें पैदा हो गयी हैं कि आदमी उन्हें पूरी करने के लिए दौड़ते-दौड़ते खोखला, तनाव-भरा और बेदम हो जाता है। यह किसी ऊँचे सोच से गुजर नहीं पाता। देखा जा सकता है कि भूमंडलीकरण की संस्कृति मनुष्य का सामाजिक दायित्वबोध मिटा रही है। उसे अधिकाधिक लालची बनाती जा रही है। लपालच से भरा आदमी अंततः कैसा साहित्यकार, कैसा कलाकार, कैसा फिल्म निर्माता, कैसा शिक्षक, कैसा डॉक्टर, कैसा वकील और कैसा राजनेता बनेगा, यह अधिक स्पष्ट करने की जरूरत नहीं है।

बाजार युद्ध के मैदान बने हुए हैं और युद्ध बाजार के खेल हैं। भूमंडलीकरण पिछले 20 सालों में जो खुलापन से आया है, उससे उधार की चमक देकर मनुष्य से बहुत कुछ छीना गया है। आम आदमी को अब तेजी से इसका अहसास हो रहा है। आसमान आतिशबाजी से कितनी देर चमकता रहेगा, अगर पीछे एक विशाल काला अंधकार हो।

अमेरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा के नये ढंग के आचरण भ्रम पैदा करते हैं कि ये निजी हैं या बदलते अमेरिका के। एक महाशक्ति के प्रतिनिधि का साधारण व्यवहार भी एक बड़ा संदेश होता है। ओबामा ने राष्ट्रपति पद कही शपथ लेने के साथ ही फर्क का अहसास कराना शुरू कर दिया था। वे ईजीएट में भाषण देते हैं, अमेरिका इस्लामी दुनिया से अच्छा संबंध चाहता है। यह भाषण उसी क्षण अरबी, उर्दू, और पंजाबी में एक साथ प्रसारित होता है। उन्हें 'ब्लैक' होने की वजह से कई बार आलोचना का शिकार होना पड़ता है, पर वे शरीर के रंग की राजनीति करने से इन्कार कर देते हैं। वे नहीं चाहते कि उन्हें अमेरिका का पहला ब्लैक राष्ट्रपति कहा जाये। हालांकि कुछ ब्लैक राजनीतिज्ञ ही यह कहते हैं कि वे काली चमड़ी के भीतर बहुत खराब ढंग से गोरे हैं। यह अनदेखी बाते हैं कि 2009 की दिवाली के अवसर पर ओबामा वैदिक मंत्रोच्चार के बीच व्हाइट हाउस में दीप प्रज्वलित करते हैं। कोई अमेरिकी राष्ट्रपति पहली बार पश्चिम के राजमहलों में ऐसा करते हैं। ब्रिटेन की 10 डाउनिंग स्ट्रीट में भी यही नजारा बनता है, पहली बात पश्चिम के राजमहलों में जब-तब संस्कृत के श्लाक गूंज जाते हैं जाहिर है, समस्याओं को पहचानने के लिए जो नया परिप्रेक्ष्य बनाया जा रहा है, उसमें सांस्कृतिक चिन्हों का उपयोग बढ़ गया है।

गौर करने की चीज है कि भूमंडलीकरण ने राजनीतिक स्तर पर जिस तरह 'लोकतंत्र' का अर्थ काट-छाँट कर छोटा कर दिया है, उसी तरह 'संस्कृति' का अर्थ भी छोटा कर दिया है। आज दुनिया के देशों में लोकतंत्र वित्तीय पूँजी का बेरोकटोक आवागमन सुनिश्चित करनेवाली एक उदार राजनीतिक पटाखे छोड़ती रहती है। लगता है, राजनीति में एक हलचल मची हुई है, जबकि हर तरह सिर्फ शब्दबाजी होती है। आम जनता भूमंडलीकरण को निशाना बना नहीं पाती, वह इतनी विभक्त होती है। भूमंडलीकरण से चालित लोकतंत्र का लक्ष्य बाजार-अर्थव्यवस्था के प्रतिरोध को, यदि यह आकार लेता है, कौशलपूर्वक कुचलना है। भूमंडलीकरण दुनिया में जिहस तरह एक-जैसा लोकतंत्र चाहता है, वह एक

जैसी संस्कृति भी चाहता है। उसे सैकड़ों परम्पराओं की सर्जनात्मक उदात्तता और विशिष्टता से कोई मतलब नहीं है।

वर्तमान दौर में भूमंडलीकरण के असर की वजह से पश्चिमी संस्कृति का वर्चस्व छाया है, मानों सभी को उसी से तालमेल बैठाना है। महामीडिया, सूचना क्रांति और प्रौद्योगिकी मुख्यतः पश्चिमी संस्कृति के वाहक हैं। म्यूजिक और फिल्म के लिए 20 वीं सदी के शुरुआत से ही अमेरिका केन्द्र है। हालीवुड अमेरिका में है। कहना न होगा कि अमेरीकी संस्कृति उद्योग का एक प्रमुख लक्ष्य देश भारत है। यहाँ अंग्रेजी शिक्षा ने पश्चिम का सांस्कृतिक साम्राज्यवाद फैलाने और एक तरह से पश्चिमी संस्कृति को ही एकमात्र संस्कृति ठहराने में मुख्य भूमिका अदा की है। भारत में पश्चिमी संस्कृति का इतना असर है कि पश्चिमी देश चीन, जापान जेसे देशों की तुलना में उसे ज्यादा अपना मानते हैं। भूमंडलीकरण के दौर में इथति यह है कि विज्ञापन और आक्रामक प्रचार ने वरण की स्वतंत्रता का प्रश्न मिटा दिया है। संस्कृति के अर्थ को सीमित करते हुए बाजार में मनोरंन और दिखवा की जो पश्चिमी ढंग ही चीजें आ रही हैं, अब बस वो ही संस्कृति मानी जाती हैं।

आज की पश्चिमी संस्कृति, हमें समझना होगा कि यह वस्तुतः यूरोपीय मूल्यों पर नहीं, अमरीकी मूल्यों पर आधारित है। इसकी धुरी है व्यक्तिगत स्वाधीनता। व्यक्तिगत स्वाधीनता और खुदगर्जी के बीच बस एक सूत का फर्क है। जिसव तरह बाजार अर्थव्यवस्था के लिए उदारीकरण जरूरी है, उसी तरह उपभोक्तावाद को लिए व्यक्तिगत स्वाधीनता जरूरी है। दरअसल व्यक्तिगत स्वाधीनता का लक्ष्य सिकुड़ गया है। एक काल में यह सामंती व्यवस्था-विरोधी मूल्य था। यह हम बुद्ध, रामानंद, गुरुनानक, कबीर जेसे व्यक्तियों को सामने रखकर समझ सकते हैं। साहित्य, वैज्ञानिक आविष्कार और सामाजिक सुधार के लिए व्यक्तिगत स्वाधीनता का उपयोग एक समय जोखिम से भरा था। आज व्यक्तिगत स्वाधीनता का लक्ष्य है अपने सुख का साम्राज्य बनाना, जहाँ ‘दूसरे’ के लिए चिंता का

अवकाश न हो। इस तरह मनुष्य एक यंत्रजीवी सुखवादी में ‘रिह्यूस’ हो जाता है। कहा जा सकता है, भूमंडलीकरण की संस्कृति मुख्यतः खुदगर्जी की संस्कृति है, जिसने पश्चिम के सार्वजनिक जवाबदेही, दिमागी खुलेपन, समावेशिकता और पश्चिमी जीवन के ऐसे ही कई अन्य उच्चतर मूल्यों को ढक लिया है।

उल्लेखनीय है कि दूसरे विश्वयुद्धके बाद अमेरिका विश्व अर्थव्यवस्था, सैन्य ताकत और संस्कृति पर यूरोपीय वर्चस्व मिटाकर पश्चिम को नेतृत्व देने लगा था। इसलिए आज भूमंडलीकरण का एक अर्थ अमरीकीकरण है। यह चिंताजनक है कि अमरीकी दुष्टिकोण का अर्थतंत्र पर नहीं शिक्षा, संस्कृति और जीवन शैली सब परी भारी प्रभाव पड़ रहा है। हमारे देश के नौजवानों के बालने, चलने-फिरने और दिखने से लेकर समाज के बारे में उनके सोच तक में जो एक भारी उलटफेर आ रहा है, उसे पर अमेरिका की छाया रूपाणि है। यह भी चिंताजनक है कि ऐसे मामलों को लेकर सामान्यतः कोई बड़ा राजनीतिज्ञ एतराज नहीं दिखाई देता, मानो फिलहाल सभी राजनीतिक दल हथियार डाल चुके हों। क्या इसका यह अर्थ निकाला जाए कि उपनिवेशवाद पहले ही भूमंडलीकरण के लिए जमीन पर्याप्त उर्वर बनाकर गया था या यह कहा जाए कि भारतीय लोकतंत्र में भ्रष्टाचार, अरिमता की राजनीति और पश्चिम के प्रति अंध-अनुराग, जिनकी वजह से लोकतंत्र सहज बैध्य हो गया, वस्तुतः उपनिवेशकों की देन है।

हम कहा सकते हैं कि तर्क, अहिंसा मित्रता, समवाय, भोग के साथ त्याग, सहिष्णुता, वर्चस्व का प्रतिरोध भारत की सदियों पुरानी परम्पराएँ हैं। हर युग में भारत के लोग इनमें रचे-बसे रहे हैं। ये परम्पराएँ के युग में काफी क्षतिग्रस्त हो जाने के बावजूद मिट नहीं पायी। निश्चय ही पहले उपनिवेशन सीमित था, आदमी का मन गुलाम न था, आज इसका मन इतना गुलाम होता जा रहा है कि यह अमरीकीकरण को ही भूमंडलीकरण मान रहा है। उस पर बाजार की संस्कृति छा रही है। इसके बावजूद, यह नहीं कहा जा सकता कि आज के सांस्कृतिक पतन के लिए सिर्फ उपनिवेशवाद या अमेरिका दोषी है, भारत के

शिक्षित मध्यवर्गीय लोगों की मानसिकता में घुसे-पैठे पुराने सामंती तत्व भी इसके लिए कम उत्तरदायी नहीं है। इसलिए सांस्कृतिक पतन के अमरीकी मूल्यों का जो विरोध कूपमंडूक और कट्टर राष्ट्रवादियों द्वारा होता है, वह भी कम बड़ा ढोंग नहीं होता।

भूमंडलीकरण और गरीब दोनों को एक साथ साथने की कोशिश राष्ट्रीय उदारवाद की पहचान है। दोनों ही अंततः सध नहीं पाते, क्योंकि शासन सुशासन नहीं है। इसका अर्थ है कि भूमंडलीकरण जिस तरह सामाजिक सद्भाव लाने में विफल हैं, उसी तरह राजनीति में गुणवत्ता लाने में असफल है। यह सच्चाई है कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में अब हम जिस मोड़ पर पहुँच गये हैं, वहाँ से कदम वापस खींचना भी आसान नहीं होगा। अतः आज के अंतरराष्ट्रीय परिवेश में हमें विश्व बैंक, डब्ल्यू. टी. ओ. एवं अंतरराष्ट्रीय मुद्रा-कोष पर इसकी नीतियों में परिवर्तन हेतु दबाव बनाना पड़ेगा और इसके लिए सभी विकासशील देशों को एक मंच पर आकर आवाज उठानी पड़ेगी।

सन्दर्भः

1. नाथ, शंभु : भूमंडलीकरण की संस्कृति ‘कथादेश’, जनवारी 2010.
2. भगवती, जगदीश : इन डिफेंस ऑफ ग्लोबलाइजेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली, 2004.
3. गुप्ता, विष्व दास : ग्लोबलाइजेशन : इंडियाज एडजस्टमेंट एक्सपीरियंस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 241-248.
4. ओमवेदत्, गेल : ‘रिफ्लेक्शन ऑन लिबरलाइजेशन’, बीसीएएस, वॉल्यूस-27, नं. 4, अक्टूबर-दिसम्बर, 1995.